अध्ययन सामग्री
यू. जी. सेम. II
यूनिट - 2
डॉ० मालविका तिवारी
सहायक प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
एच. डी. जैन महाविद्यालय, आरा

रघुवंशमहाकाव्य के प्रथम सर्ग का सारांश

रघुवंश संस्कृत साहित्य के कविकुलगुरु की वह उत्कृष्ट और सुविख्यात रचना है, जिसने कालिदास के साथ-साथ पूरे संस्कृत वाङ्मय की वृहत् पृष्ठभूमि को विश्वस्तरीय गरिमा प्रदान करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इस ग्रन्थ में महाकवि ने सूर्यवंश के 29 राजाओं का जीवनवृत्त प्रस्तुत करके हमारे समक्ष अनेक सामाजिक, राजनैतिक एवं नैतिक आदर्श प्रस्तुत किए हैं।

रघुवंश महाकाव्य उन्नीस सर्गों में विभक्त है। इसमें कुल 1569 श्लोक हैं। अत्यन्त प्रतापी राजा मनु से लेकर परमविलासी राजा अग्निवर्ण तक की कथा रघुवंश में संकलित है।

महाकवि कालिदास प्रथम सर्ग के आरम्भ में रघुवंश नाम की सार्थकता सिद्ध करते हुए स्वयं लिखते हैं -

रघुणामन्वयं वक्ष्ये - इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है - रघोः वंशः (रघु का वंश), रघूणां वंशः (रघुवंशियों का वंश), रघुवंशस्य वृत्तमस्तीत्यास्मिन् काव्ये तत् रघुवंशमिति (रघुवंश का वर्णन है जिस काव्य में वह रघुवंश महाकाव्य है। राजा दिलीप से प्रारम्भ करते हुए राजा राम का विस्तृत वर्णन है।

महाकवि कालिदास सर्वप्रथम शिव और पार्वती को नमन करते हुए रघुवंश महाकाव्य का प्रारम्भ करते हैं। ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलाचरण करके स्वयं को रघुकुल जैसे महान वंश का वर्णन करने में असमर्थ कहते हैं तथा लिखते हैं कि वाल्मीकि आदि महाकवियों ने सूर्यवंश पर काव्य की रचना करके वाणी का द्वार खोल दिया है तभी मैं अल्पमति इस वंश का वर्णन कर पा रहा हूँ। रघु जैसे उच्चकुल का वर्णन करना मेरे लिए ठीक वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति छोटी सी नौका से समुद्र को पार करने का प्रयास करता है।

भगवान् सूर्य के पुत्र मनु सूर्यवंश के प्रवर्तक हुए और उन्हीं के वंश में बुद्धिमान, प्रजावत्सल तथा दयालु राजा दिलीप हुए। राजा दिलीप को सन्तान नहीं थी, अतः समस्त भूमण्डल के एकमात्र राजा होते हुए भी वे बड़े दुःखी रहा करते थे।

एकदिन राज्यभार अपने मन्त्रियों को सौंपकर महारानी सुदक्षिणा को साथ लेकर उन्होंने अपने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ के आश्रम का प्रस्थान किया। मार्ग में सुन्दर वन तथा कमल-युक्त तालाबों की शोभा देखते हुए तथा हरिण आदि पशु-पक्षियों की मनोहर वाणी सुनते हुए और अपनी ग्रामीण प्रजा की भेंट स्वीकार करते हुए सायंकाल में ऋषियों से भरे हुए गुरु के आश्रम में पहुँचे।

राजा के आश्रम में पहुँचते ही सभी ने अपने रक्षक राजा का सत्कार किया और राजा ने अरुन्धती सहित गुरुजी के दर्शन किये तथा चरणस्पर्श कर गुरुजी का आशीर्वाद प्राप्त किया। कुशलक्षेम पूछने के उपरान्त राजा ने सन्तान न होने के कारण अपना कष्ट गुरुजी से कहा। गुरुजी ने समाधि के द्वारा कारण जानकर राजा से कहा — कि एक समय स्वर्ग से लौटते हुए तुमने कल्पवृक्ष की छाया में बैठी हुई कामधेनु की प्रदक्षिणा आदि पूजा नहीं की थी। उसी ने तुम्हें शाप दिया और वह कामधेनु इस समय वरुण के एक बड़े यज्ञ के लिए पाताल गई है। अतः कामधेनु की सन्तान नन्दिनी जो कि यहाँ है उसी की सेवा करो। नन्दिनी भी कामधेनु के समान प्रसन्न होने पर मनोरथ को पूर्ण करने वाली है। अतः हे राजन्! तुम जंगली कंद-मूल, फल खाकर नन्दिनी के चलने पर चलना, बैठने पर बैठना तथा इसके जल पीने पर जल पीना और तुम्हारी धर्मपत्नी भी नियमपूर्वक प्रातः चन्दन-पुष्पादि से इस नन्दिनी की पूजा करके तपोवन की सीमा तक इसका अनुगमन करे तथा सायंकाल में उसे लेकर आए। इस प्रकार सेवा में तत्पर रहो जबतक वह प्रसन्न न हो। यह कहकर वशिष्ठ जी ने जो सेवा रूपी व्रत की विधि का आदेश देकर राजा को विश्राम करने की आज्ञा दी और राजा ने गुरुजी की बताई हुई पर्णकुटी में रात बिताई। राजा और रानी नियमपूर्वक वशिष्ठ के आश्रम में मुनिवृत्ति से रहने लगे।